ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2015; 1(2): 189-191
www.allresearchjournal.com
Received: 23-11-2014
Accepted: 24-12-2014

ममता तिवारी
गवेशिका, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, ल०ना०मि० विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
ममता तिवारी
गवेशिका, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, ल०ना०मि० विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

याज्ञवल्क्यस्मृति एवं पाराशरस्मृतीय दण्ड विधानो का तुलनात्मक अध्ययन

ममता तिवारी

सारांशः
भारतीय नृविज्ञान के सामाजिक विकास एवं संतुलन में स्मृति–साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का जो स्वरूप इन ग्रंथो में मिलता है वह सचमुच विश्व साहित्य का अमूल्य निधि है। यो तो भारतीय आर्य सभ्यता का इतिहास वेदों से ही माना जाता है किन्तु स्मृति काल में आते–आते सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्रों का सांगोपांग विवरण यथेष्ठ रूप में मिलता है और याज्ञवल्क्य स्मृति और पराशरस्मृति में जो दण्ड विधान का प्रावधान है वो प्राचीन ही नहीं वर्तमान के लिए भी आवश्यक है दोनों में तुलनात्मक अध्ययन करना समीचीन प्रतीत होता है। याज्ञवल्क्य ने जो दण्ड की व्यवस्था की क्या वे दण्ड समाज के द्वारा स्वीकार नहीं थे परन्तु पाराशर ने दण्ड की व्यवस्था विशेष परिस्थिति ने निर्धारित की है।

प्रस्तावनाः
किसी भी समाज में चाहे वह आदिम, बर्बर अथवा सभ्य समाज हो दण्ड का प्रयोग दो आधार पर किया जाता रहा हैः–

1. समूह के विरूद्ध अपराध करने पर जो क्षति होती है उसकी पूर्ति के लिए दण्ड देना अपेक्षित है।
2. दण्ड–दण्ड के लिए दिया जाता है। दण्ड की वांछनीयता और उसके लक्षणों का संबंध अपराध के सिद्धानतें से रहा है।

आदिकाल से अपराध को प्रेतात्माओ के प्रभाव का फल बताया जाता था और दण्ड का मुख्य उद्देश्य देवताओ को संतुष्ट करना होता था। दण्ड के विकास की दूसरी अवस्था में सामाजिक प्रतिशोध पर अत्यधिक बल दिया जाता था। दण्ड का एक उद्देश्य भविष्य में अपराध करनेवाले को वैसा ही अथवा उससे बुरा अपराध करने से रोकना है। यद्यपि सामाजिक प्रतिरोध दण्ड का वास्तविक आधार है। दण्ड पानेवाला व्यक्ति दूसरो के लिए उदाहरण बन जाता है। यही कारण है कि प्राचीन सम्य समाज में सार्वजनिक स्थान पर जनता के समक्ष दण्ड दिया जाता था। [1] याज्ञवल्क्य ने कहा है कि पूर्वकाल में ब्रह्मा ने धर्म को दण्ड के रूप में निर्मित किया था। [2]
मनु का विश्वास है कि केवल दण्ड के भय से ही संसार न्याय पथ से विचलित नहीं होता है। [3] महाभारत में भी कहा गया है कि कोई पापी राजदण्ड के भय से पाप नहीं करता। [4] दण्ड का मुख्य उद्देश्य अपराध करने पर रोकना भी है। साथ ही उन व्यक्तियों के मस्तिष्क में भय उत्पन्न कर देना है जो अपराध करने के लिए लालायित हो सकते है। इस प्रकार समाज का अपराध मुक्त करना ही दण्ड का मुख्य उद्देश्य है। प्राचीन भारतीय समाज की दण्ड व्यवस्था पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि तात्कालिक समाज में दण्ड के अनेक सिद्धान्त प्रचलित है। दण्ड के उन सिद्धान्तों को निम्नलिखित रूप से बाँट सकते हैः–

1. प्रायश्चित का सिद्धान्त।
2. प्रतिशोधात्मक सिद्धान्त।
3. प्रतिरोधात्मक सिद्धान्त।
4. परिष्कारात्मक सिद्धान्त।

प्रायश्चित सिद्धान्तः
यह सिद्धान्त नैतिकता पर आधारित है। इसे पूर्णतया विधि की सीमा से नहीं लगाया जा सकता। यद्यपि सामान्यतः धारणा यह है कि प्रायश्चित पाप का होता है और दण्ड अपराध पर मिलता है किन्तु पाप और अपराध दण्ड की सीमा से परे होते है। फलतः प्रायश्चित राज्य–हस्तक्षेप में तब तक नहीं आता जब तक उसका प्रयोग सामाजिक प्रतिनिधियो से उचित रूप में होता रहता है। पाप को आचारिक अपराध भी कह सकते है, जिनके लिए प्रायश्चित करना पड़ता है।

प्राचीन भारतीय विधि–साहित्य पर दृष्टिपात करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि सामाजिक मूल्यो की अवधारणा को बनाये रखने के लिए आचारिक अपराध को नैतिकता से जोड़कर अपराधी को सन्मार्ग पर लाने का प्रयास किया जाता था। प्रायः सभी स्मृतियों में दण्ड की अपेक्षा प्रायश्चित पर अधिक बल दिया गया है। यह इस बात को निर्देशित करता है कि भारतीय समाज सामाजिक मूल्यो को स्थिर रखने के लिए धर्म एवं नैतिकता का सहारा लेता रहा है।

प्रतिशोधात्मक सिद्धान्तः

प्रतिशोध अर्थात बदला लेने की भावना पर आधारित है। इस सिद्धान्त के अनुसार अपराधी के साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा कि उसने अपराध किया है। यदि अपराधी ने किसी का हाथ काट लिया है तो उसका हाथ काट लेना चाहिए। भारतीय समाज में भी यह दण्ड प्रचलित था। याज्ञवल्क्य स्मृति, मनुस्मृति, महाभारत में भी इन सिद्धान्तों का स्पष्ट रूप मिलता है। [5]

कौटिल्य के अर्थशास्त्र [6] और ''मनुस्मृति'' [7] में ऐसा उल्लेख है कि जिस अंग–विशेष से शुद्र एवं ब्राह्मणोत्तर क्षत्रियादि, ब्राह्मण को हानि पहुँचाये तो अंग विशेष काट लेनी चाहिए। अपराध रोकने तथा समाज के अन्य सदस्यों को चेतावनी देने के लिए दण्ड से प्रतिरोधात्मक सिद्धान्त का प्रयोग किया जाता था।

प्रतिरोधात्मक सिद्धान्तः

इस सिद्धान्त में अपराध रोकने तथा समाज के अन्य सदस्यो को चेतावनी देने के लिए दण्ड से प्रतिरोधात्मक सिद्धान्त का प्रयोग किया जाता था। इस सिद्धान्त के अनुसार अपराधी को इतना कठोर दण्ड दिया जाना चाहिए कि दर्शक मर्माहत होकर भयवश भविष्य में कोई अपराध न करे। भारत का प्राचीन दण्ड शास्त्र मुख्यतया इसी सिद्धान्त पर आधारित है। 'मनु' का विश्वास है कि केवल दण्ड के भय से ही संसार न्याय–पथ से विचलित नहीं होता। [8]

परिश्कारात्मक सिद्धान्तः

इस के अनुसार अपराधी को व्यवस्थित ढंग से सुधारना है। प्राचीन भारत में सुधारात्मक सिद्धान्त भी प्रचलित था। याज्ञवल्क्य के अनुसार स्वधर्म–स्खलित का दण्ड देकर ही उचित मार्ग में लाना चाहिए। [9] महाभारत में भी इस सिद्धान्त पर जोर दिया है। [10]

शुक्राचार्य का कथन है कि दमन तो दण्ड का साधन है और सुधार साध्य का। उनके अनुसार दण्ड वही है जिससे अपराध समाप्त किया जा सके। दमन के माध्यम से पशु भी सुधारे और नियंत्रित किये जाते है। कामन्दक नीतिनुसार में भी इस सिद्धान्त को प्रतिपादन किया गया है। [12]

''यथा गौःपाल्यते काले दुह्यते च तथा प्रजा।
सिच्यतै चीयते चैव लता पुष्पफलार्थिना।।

कौटिल्य कठोर दण्ड विधान के पक्षधर है। किन्तु उनका उद्देश्य सुधारात्मक है। उनके अनुसार यदि अपराधी को समुचित व्यवस्था की जाए तो अपराधिकण शक्ति समाज में हो ही नहीं सकती–

''व्यवस्थित मर्यादाः कृतवर्णाश्रमस्थितिः।
त्रययाहिंरक्षितो लोकः प्रसीदाति न सीदति।।

यदि अपराधी को दण्ड नहीं दिया जायेगा तो अपराध का संबंध अन्य भी हो सकता है। [13] याज्ञवल्क्य के अनुसार दण्ड का उद्देश्य चरित्र नैतिकता तथा मानवीय गुणों का विकास करना है। अपराधी यदि कुटुम्ब, जाति, वर्ग आदि से दण्ड पा चुका है तो राजा उसे सही मार्ग पर ले आने का कष्ट करें। 'बाइविल' में भी इस सिद्धान्त का गुण बताया गया है, धन्य है वह जो एक पापी को गुणी में बदल देता है। कौटिल्य के अनुसार राजा का जन्म दिवस राजपुत्र के जन्म, युवराज के अभिषेक, विजय, शुभ नक्षत्र एवं पर्व पर बन्दियों को छोड़ देना चाहिए।

''अपूर्वदेशाधिगमे युवराजाभिषेचने।
पुत्रजन्मनि वामोक्षोबन्धनस्य विधीयते।।
बन्धनागारे च बालवृद् व्याधि तानाधाना
जातनक्षतपौर्णमासीषु विसर्गः।

प्रस्तुत अध्याय से मेरा ध्येय याज्ञवल्क्य स्मृति एवं पाराशर स्मृतिगत शुद्धि एवं दण्ड विधान के तुलानात्मक अध्ययन तक ही सीमित है।

अतः उपर्युक्त दोनों स्मृतियो के दण्ड–विधानो पर बल देना अपेक्षित है। साथ ही यथास्थान अन्य स्मृतियो के दण्ड–विधानो का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत किया जायेगा। दण्ड विधान के अनेक रूप स्मृतियो में मिलते है। उन सभी का उपयुक्त दण्ड–सिद्धान्तो के आलोक में विवरण प्रस्तुत करना समुचित जान पड़ता है।

1. प्रायश्चित सिद्धान्त

यह सिद्धान्त दण्ड का प्रमुख सिद्धान्त है तथा स्मृति– साहित्य में इस सिद्धान्त पर बल दिया गया है। यह सिद्धान्त नैतिकता एवं धर्म पर आधारित है। हमारे मनीषियों ने दण्ड को नीति एवं धर्म का आवरण देकर व्यवस्थित समाज की परिकल्पना की थी। शतेधित एवं परिष्कृत दण्ड सिद्धान्तों में सर्वाधिक प्रचलित सिद्धान्त प्रायश्चित ही है। प्रायश्चित को दो भागों में विभाजित किया गया है।

(क) मानव संबंधी प्रायश्चित
(ख) पशुगत प्रायश्चित

2. प्रतिशोधात्मक सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का आधार ''सठे शाठ्य समाचरेतु'' या अंगेजी कहावत–ज्पज वित ज्ंज है। यह सिद्धान्त बदले की भावना का पोषक है। याज्ञवल्क्य का आदेश है कि ब्राह्मण पर डंडा उठाने पर कृच्छ व्रत, डंडा मार के गिरा देने पर अतिकृच्छ व्रत, भीतर ही रक्त रह जाने पर भी कृच्छ व्रत का शुद्धि के लिए आचरण करे। याज्ञवल्क्य ने चोरी आदि अपराध को रोकने के लिए चोर के अंगो को कटवा देने का विचार है।

3. प्रतिरोधात्मक सिद्धान्त

यह दण्ड का तीसरा सिद्धान्त है। इसका प्रयोग अपराधी के बढ़ते कदम को रोकना है। अपराधी को ऐसा दण्ड देना चाहिए कि दर्शकगण डरकर अपराध करने का साहस न कर सकें

''येन–येन ययाड.गेन स्तेनो नृषु विचेस्तसे।
तत्वदेव हरेत्तस्यं प्रत्यादेशाय पार्थिवः।।

इस श्लोक से यह प्रतीत होता है कि 'मनु' का दण्ड 'याज्ञवल्क्य' से ज्यादा कठोर है।

4. परिष्कारात्मक सिद्धान्त

यो तो देखा जाए तो पाराशर का दण्ड व्यवस्था परिष्करात्मक सिद्धान्त पर आधारित है। पूरी पुस्तक में अपराधो की शुद्धि के नियमो को सुधारने की ही चर्चा मिलती है। परन्तु यहाँ मेरा ध्येय पाराशस्मृति और याज्ञवल्क्यस्मृति में वर्णित समानताओ और विभिन्नताओ की चर्चा करना ही है, साथ ही उन दोनों ग्रंथो में

वर्णित विचारो के पोषण या विरोध संबंधी अन्य ग्रंथ के मतो का भी उल्लेख किया जाएगा।

याज्ञवल्क्य ने इन पापियो को शस्त्रधारियो के लक्ष्य को जलती अग्नि में नीचे सिर करके तीन बार अपने आप को डालने के बराबर है। इत्यादि तरीको से याज्ञवल्क्य और पाराशर के दण्ड विधानो का तुलानात्मक अध्ययन किया गया है।

निष्कर्षः

याज्ञवल्क्य स्मृति एवं पाराशर स्मृतिगत दण्डो का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया जिससे यह स्पष्ट होता है कि याज्ञवल्क्य ने सामाजिक व्यवस्थाओं को बनाये रखने के लिए विभिन्न अपराध के लिए जो दण्ड व्यवस्था की थी क्या वे दण्ड समाज के द्वारा स्वीकार्य नहीं थे? यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पराशर ने शुद्धि एवं प्रायश्चित पर ही विशेष बल दिया है। उन्होंने दण्ड की व्यवस्था विशेष परिस्थिति में ही निर्धारित की है। अतः दोनों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि समाजिक नियमो एवं विधानों के संचालन में कौन–कौन से परिवर्त्तन किये गये।

सन्दर्भ ग्रंथः

या०स्मृ० 8:38 ''प्रायश्चितं सदा दद्याद्देवताग्रतनाग्रतः।
आत्मकृच्छं ततः कृत्वाजपेद्वै वेदमातरम।।

या० स्मृ० 1: 354
म० स्मृ० 7 :15
म० रा० प० 15 : 5
या० स्मृ० 2: 215, 216
अ० शा० 3: 19, 23
म० स्मृ० 8: 279, 280
म० स्मृ० 7: 15 ''तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
भयादभोगाय कल्पन्ते स्वधर्मान्न चलन्ति च।।
शा० प०– 15: 5 राजदण्डभयादेके पापः पापनं कुर्वते।
या० स्मृ० 1: 361
शा० प० 122: 40, 41
शु०नी० 4: 48
का०नी० 5: 84
अर्था० शा० 1: 3, 2
या० स्मृ० 1: 361
अर्थ० शा० 2: 36
या० स्मृ० 3: 220, 226
या०स्मृ० 8: 4, 7
म० स्मृ० 11: 44, 46

1. अपराध और दण्ड शास्त्र–लेखक, कौशल कुमार राय चोरवम्बा विद्या भवन वाराणसी–1965
2. कौटिल्य अर्थशास्त्र–टीकाकार, पाण्डेय रामतेजशास्त्री काशी–1945
3. धर्मशास्त्र का इतिहास, लेखक, पी०वी० काणे (उ०प्र०) लखनऊ
4. पाराशर स्मृति–चौखम्बा अमर भारती प्रकाशन वाराणसी–1983
5. प्राचीन भारत में अपराध और दण्ड के लेखक–डॉ० हरिहरनाथ त्रिपाठी चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी–1965
6. महाभारत–अनुशासन पर्व, गीताप्रेस, गोरखपुर सं०–2026
7. महाभारत–शान्तिपर्व, गीता पर्व, गोरखपुर सं०–2026
8. मनुस्मृति– टीकाकार, ह्रगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस वाराणसी–1970
9. शुक्रनीति व्याख्याकार–पं० ब्रह्मशंकर मिश्र चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी–1968
10. श्री मदभागवद्गीता–गीता प्रेस गोरखपुर सं०–2029
11. विष्णु पुराण–गीता प्रेस, गोरखपुर सम्वत् 2009